भारत की समृ) परम्परा के प्रतीक उत्तर प्रदेष के लोकगीत

रूचिका सिंह
शोधार्थी
आर0जी0पी0जी0 कॉलेज, मेरठ

हमारा दे ा बहुत बड़ा दे ा है। इसमें अनेक भाशाएं, अनेक वे ाभूशाएं, अनेक धर्म, अनेक जातियाँ, और अनेक मत–मतान्तर हैं। हम तैतीस करोड़ देवताओं के उपासक हैं। हर दस मील पर हमारी भाशा के उच्चारण में परिवर्तन होता जाता है, हर नगर अपनी अलग वि ोशता रखता है, हर गाँव की अलग स्थिति है, हर परिवार की अलग–अलग समस्यायें हैं, हर व्यक्ति की अलग मनोद ाा है किन्तु इन सब अलगावों के होते हुए भी सबकी आत्मा एक है। भाशा का भेद होते हुए भी गीतों भरा भारतीय मानव हृदय तथा उसके सुख–दुःख की अनुभूति, उसकी स्थिति–परिस्थिति, उसकी आ ाा निरा ाा, उसकी कुण्ठा और विव ाता एक जैसी ही है। दे ा भर के गीतों में एक रसता का ऐसा सूत्र पिरो दिया गया है कि बाहर से वे अलग–अलग होते हुए भी अन्दर से एक है। सभी के अर्थों में समानता है। एकता की यह परिपाटी हर प्रदे ा के गीतों में अनेक प्रकार से प्रकट होती रहती है। युद्ध, भ्ाान्ति, खेती, व्यवसाय, प्रेम, घृणा, मस्ती, परवे ाता और उन्मुक्तता इस धरती पर सब कहीं दिखाई देगीं। यही स्थितियाँ–परिस्थितियाँ दे ा भर के लोक गीतों में सिसकतीं, कसकतीं, मुस्कुरातीं, खिलखिलातीं, नाचती–गातीं दिखाई देती है। ये गीत कभी समाप्त नहीं होंगें। जब तक यह धरती है, जब तक यह नीला आका ा है, जब तक यह प्रकृति की सुन्दरता अपने नये–नये परिधान से और अधिक सुन्दर होती रहेगी, ये गीत गूँजते रहेंगे।

लोक भाब्द की व्युत्पत्ति में मतान्तर है। ऋग्वेद में ''देहि लोकम्'' भाब्द का प्रयोग हुआ है, जिसका अभिप्राय स्थान से है। वेदों में पार्थिव और दिव्यलोक की चर्चा है। बौद्ध धर्म में भी लोक का तात्पर्य अ ाोक के ि ालेखों के माध्यम से कल्याण के आदे ा से है। प्राकृत और अपभ्रं ा में ''लोकजना'' और ''लोकप्पवार्य'' आदि भाब्द लौकिक नियमों के महत्त्व के रूप में प्रयुक्त है।

हिन्दी का लोक भाब्द ऐंग्लो सेक्सन भाब्द थ्वस्ज्ञ के समानार्थक है। थ्वस्ज्ञ भाब्द की उत्पत्ति थ्वस्ब से हुई है। जर्मनी में इसे टव्स्ज्ञ के रूप में लिखा गया है। अंग्रेजी के विसा का अर्थ अ ाक्षित, असंस्कृत और मूढ़ समाज से है। नवीन दृश्टिकोण में सर्वसाधारण और राश्ट्र के सभी व्यक्तियों के लिए इस भाब्द का प्रयोग होने लगा है। हिन्दी के 'लोक' भाब्द पर्यायवाची हैं अंग्रेजी के विसा भाब्द का । अत्याधिक काम में इस भाब्द का प्रयोग जन या ग्राम भाब्द के लिए किया जाता है।

लोक में व्याप्त प्राणियों के जीवन का मुखरित व्यापार लोक साहित्य है जिसमें क्षण–क्षण की अनुभूतियाँ, मनोवेग, हृदयोद्गार तथा क्रिया–व्यापार साकार होते हैं। वि व के वि ाल प्रांगण में जो, सहज और और सामान्य सत्य रूप है लोक साहित्य उनकी विवृति करता है। दे ाकाल की सीमाओ के पार अनवरत गति ाील युग की सामान्य चेतना की प्रत्येक गति का, सुशुप्ति और जागृति का, धर्म और नीति का स्वाभाविक चित्रण इसमें रहता है। विशय की वि ादता के कारण लोक साहित्य का सम्यक् वर्गीकरण समस्यामूलक रहा है, फिर भी अनेक विद्वानों में लोक साहित्य को वर्गीकृत करने का प्रयास किया है।

डॉ0 विद्या चौहान ने लोक साहित्य को निम्न पाँच कोटियों में वर्गीकृत किया गया है–

1. लोकगीत
2. लोकगाथा
3. लोक कथा
4. लोक नाट्य
5. विविध

डॉ0 कुन्दन लाल उत्प्रेती ने भी लोक साहित्य को निम्न भागों में विभक्त किया है–

1. लोकगीत ;थ्वसा.सलतपबेद्ध
2. लोकगाथा ;थ्वसा.इंससंकेद्ध
3. लोक कथा ;थ्वसा.जंसमेद्ध
4. लोक नाट्य ;थ्वसा.कतंउउंद्ध
5. प्रकीर्ण साहित्य ;डपेबमससंदमवने स्पजमतंजनतमद्ध

लोकगीतों के संग्रह से किसी भी दे ा, उसके समाज और उसके साहित्य को अत्याधिक लाभ होता है। लोक–गीत किसी भी दे ा की प्राचीन संस्कृति, सभ्यता और विचार ाीलता को प्रकट करने वाले होते हैं। उनके संग्रह में कुछ मुख्य लाभ निम्नलिखित हैं–

कंठस्थ साहित्य लिपि–बद्ध होकर सुरक्षित रखा जा सकता है इससे महिलाओं तथा पुरूशों के मस्तिश्क की महिमा देखने को मिलती है। जिन ग्रामीणों को हमारा ि ाक्षित समाज मूर्ख, फूहड़ और हीन समझता है। उनके मन–मस्तिश्क में कैसे मधुर, सरस और

कोमल भाव भरे रहते हैं इसका ज्ञान हमें लोकगीतों के अध्ययन से भली–भांति हो जाता है।

इन गीतों की जानकारी से आज के कवियों को भी पर्याप्त लाभ हो सकता है। आज बुद्धिवाद के चक्कर में पड़कर जो अनेक कवि बेतुकी कवितायें करते रहते हैं उन्हें इन भावनापूर्ण गीतों ने अपने भावपक्ष को परिश्कृत करने का अवसर मिल सकेगा।

लोक–गीतों ने प्रेरणा के मूल–स्रोत से अपने को कभी अलग नहीं किया। जीवन की अग्रगामी भाक्तियों से लोक–प्रतिभा को सदा ही आगे बढ़ाने का कार्य किया है। वे लोकगीत युग–युग की सीमाओं को पार करते हुए, अनेक बाधाओं को हटाते हुए, विचित्र उलझनों से सुलझते हुए, सामाजिक भाक्तियों की विकास–गाथा को विभिन्न जनपदीय भाशाओं में व्यक्त करते हुए चले जा रहे हैं, अपने ही ताल–स्वरों पर गूंजते, प्रतिध्वनित होते, थिरकते, नाचते और गुदगुदाते।

लोक–गीतों के काव्यत्त्व को तो लेखनी द्वारा व्यक्त किया जा सकता है किन्तु ये गीत ग्रामीण महिलाओं के कंठ से निकलते हैं तो इनका सौन्दर्य, माधुर्य और उन्माद कुछ और ही हो जाता है। उसे व्यक्त करना असम्भव ही है। इन गीतों का विकास रस तो इन महिलाओं के कंठों में होता है। इस रस को प्राप्त करने के लिये तो टेप रिकार्डर की ही आव यकता होगी। लेखनी इस सरस रस के मिठास को कभी व्यक्त नहीं कर सकती। तीज त्यौहारों, जन्मोत्सव, विवाह आदि के स्वर पर जब गृह–देवियों का समूह उन्मुक्त हो उन्माद के साथ विभिन्न गीतों को गाने लगता है तो सुनने वाले आनन्द में मग्न हुए बिना नहीं रह सकते।

लोकगीत मानव हृदय की वह नैसर्गिक अभिव्यक्ति है, जिसमें भाव, भाशा और छन्द की नियमितता से मुक्त रह कर स्वच्छन्द रूप से निःसृत होने लगते हैं। जीवन और जगत में व्याप्त स्थितियों एवं घटनाओं के घात–प्रतिघात से उत्पन्न अन्तर्भावनाओं की लयात्मक उद्‌गीर्णता लोकगीतों में प्राप्त होती है। अतएव इन सहज–स्वाभाविक गीतों के मूल में सम्पूर्ण वि व की प्रति पल घटित एवं परिवर्तित परिस्थितियाँ ही प्रेरणा रूप में विद्यमान है। इन्हीं परिस्थितियों के प्रभाव के कारण अन्तराल में विभिन्न भावनाओं का आविर्भाव होता है और ये विविध रूपिणी भावनाएँ वाणी की सहज अभिव्यक्ति लोकगीत के रूप में अभिव्यंजित हो उठती है। लोक मानस को आन्दोलित करके भात– ात भाव–लहरियों को जन्म देने वाली मूलभूत परिस्थितियाँ ही लोकगीतों की पृश्ठभूमि हैं। दे ा–काल के अनुसार इन परिस्थितियों में परिवर्तन अव यम्भावी है, फलतः लोकगीतों के वर्ण्य–विशय में भी परिवर्तन होना स्वाभाविक है। किन्तु यह परिवर्तन–जन्य अन्तर केवल बाह्य रूप में ही होता है, अपने आन्तरिक स्वरूप में प्रत्येक दे ा के लोकगीतों में विशयगत मौलिक सहृदय है। किसी काल अथवा किसी दे ा के लोकगीत हों–सबसे एक व्यापक सहज लोकानुभूति का समावे ा रहता है जो सबसे भावगत एक सूत्रता स्थापित करता है।

लोक गीत हमारे सामाजिक, धार्मिक, पारिवारिक विकास के इतिहास प्रकट करने वाले होते हैं। ये किसी भी दे ा की अमूल्य निधि कहे जा सकते हैं। लोकगीत का जन्म स्वाभाविक ही कहा जायेगा। इसके जन्म की तिथि या काल के विशय में कल्पना से ही काम लेना पड़ेगा। यह कहा जा सकता है कि आदि मानव के कण्ठ से जो विकृत भाव किसी अवसर पर प्रस्फुटित हुए होंगे वही धीरे–धीरे गीत का रूप ले बैठे। सैकड़ों–हजारों वर्शों तक सरिता की धारा की भांति ये गीत जन–जीवन में प्रवाहित होते रहे, इनमें हेर–फेर हुए, इनमें नये–नये विचार आये और वे पुराने से मिलते चले गये किन्तु इनकी गति में व्यतिक्रम नहीं पड़ा। स्त्री–पुरूशों की समय–समय पर आने वाली मनः स्थितियों ने इनमें अपने प्रभाव के पुट दिये हैं। खेतों की हरियाली, कोयल की कूक, पपीहे की पुकार और वासंती सुशमा ने इनमें थिरकन, सिहरन और तड़पन भरी हैं। इनकी लय में बालक सोये और जागे हैं, इसकी तान पर यौवन गदराया और मस्ताया है, इनकी टेक पर स्त्रियाँ नाच–नाच उठी हैं, इनकी गति पर पथिक के पाँव आगे बढ़े हैं, इनकी गूंज पर बिरही युवक का मन कसक उठा है, इनके प्रवाह में भोली अल्हड़ नवयौवना का मन बह गया है, इनकी स्वर–लहरी पर विरहिणियाँ मन मसोस कर रह गयीं हैं, इनके भाब्दों से बूढ़ों ने मन बहलाये हैं, इनकी तानों पर वैरागी में वैराग्य उत्पन्न हुआ है, इनकी तालों पर मजदूरों के फाँवड़े और किसानों के हल चले हैं, इनकी सरलता पर बालकों के समूह खिल–खिल गये हैं। ये धरती के स्वाभाविक बोल हैं, ये वायु के उन्मुक्त झोंके हैं, ये समुद्र के भाक्ति ाली ज्वार है, ये नदी के वेगयुक्त प्रवाह हैं, ये चाँद की भीतलता, सूर्य की तेजस्विता और तारों की स्वप्निल छांह लिये हुए हैं।

लोकगीत प्रकृति के उद्‌गार होते हैं। इनमें सरसता, सरलता, मधुरता और लय स्वाभाविक गुण है। इनमें करूणा, हास्य, श्रृंगार और वीरता का समावे ा रहता है। ये बने हैं, बिगड़े हैं, मिटे हैं, किन्तु फिर उत्पन्न हुए हैं। जन्म से लेकर मृत्यु तक का वर्णन इन गीतों में भरा प़ड़ा है।

डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है–''ग्राम गीत इस सभ्यता के वेद (श्रुति) हैं। वेद भी तो अपने आरम्भिक युग में श्रुति कहलाते थे। वेद भी आर्यों की महान जाति के गीत ही थे और ग्राम गीतों की भांति ही सुन–सुनकर याद किए जाते थे। सौभाग्यव ा वेद ने बाद में श्रुति से उतर कर लिपि का रूप धारण कर लिया, पर हमारे ग्रामगीत अब भी 'श्रुति' ही है।

डॉ0 भयाम परमार ने ही मध्य भारत (उत्तर प्रदे ा) के इतिहास भीर्शक श्री भास्कर रामचन्द्र भालेराम द्वारा प्रस्तुत गीतों के वर्गीकरण की सूची अंकित की है। इन्होंने लोकगीतों को चार बड़े समूहों में विभाजित किया है। उनका विभाजन इस प्रकार है–

(1) संस्कार–विशयक

1. पुत्र जन्म सोहर 2.चरूवा के गीत 3. चौक के गीत 4. साध के गीत 5. करोवनी–कन्दौरा बांधने के गीत 6. मुण्डन 7. जनेऊ 8. मामा के यहाँ पहली बार आने के गीत 9. पहली बार बारात में जाने के गीत 10. टीका 11. विवाह 12. द्विरामगमन 13. तिरायमन अर्थात् रोने के गीत 14. समधियों के गाने के गीत 15. गौदान, देवस्थापन पुराण बैठाने, कूप खनन, गृहारम्भ के गीत 16. तीर्थ यात्रा और

गमन–आगमन के गीत 17. अन्नप्रा ान के गीत 18. पलने के गीत 19. अग्ररनी–गर्भवती स्त्री विशयक 20. माता कढ़ने के गीत भेंट 21. जेवनार 22. पत्तल बांधना व खोलना 23. भरनी या ढांक के गीत 24. मेले के गीत 25. जन्मगाँठ के गीत 26. छत्री–स्थापना के गीत।

(2) माहवारी गीत

1. बारहमासा 2. नोरता–नौरात्र–चैत्र–आ िवनि 3. रामनौमी 4. आखातीज 5. द ाहरा (जेठ–आ िवनि) 6. देव भायनी, देवउठान 7. सावन हिंडोला 8. सांझी 9. सांझी 10. बीजा मिट्टी के गीत–टेसू 11. कृश्ण जन्माश्टमी 12. करवाचौथ 13. महालक्ष्मी 14. बधवा छठ 15. मोर छठ 16. नौ दुर्गा 17. गनगौर 18. कार्तिक और माघ–स्नान के गीत 19. होली 20. अहोई आठे, कार्तिक के गीत 21. कजरिया तीज, श्रावण 22. भुजरिया।

(3) सामाजिक–ऐतिहासिक

1. चन्द्राबल 2. बेला सता 3. ढोला मारू 4. हरदौल 5. बाबू के गीत 6. कारसदेव के गीत 7. कुंवर के गीत 8. हीरामन 9. नगरा 10. मन्ना देव 11. पण्डत मेहतर 12. जाहरा पीर 13. अलख 14. होली के गूजरों के गीत 15. कन्हैया 16. (सारंग) सदा वृक्ष 17. गोरा बादल 18. बुलाकीदास 19. घासीराम पटेल 20. बापू जी के गीत 21. राज केवट 22. ओखाजी 23. तेजाजी 24. गोराजी 25. मेरू जी

(4) विविध

1. खेती की कहावतें2. ऊख की फसल खत्म होने के गीत 3. वारी पूजने के गीत 4. जात व चक्की के गीत 5. लाबनी 6. रसिया 7. ख्याल 8. छून्दरा 9. दोहे–साखी 10. सोरठे 11. सवैये 12. भजन 13. कवित्त 14. सिन्धु 15. धौता।

यों तो हिन्दी के अंचल में मैथिली, मगही, भोजपुरी, अवधी, छत्तीसगढ़ी, बुन्देली, ब्रज, कनउजी, कौरवी, गढ़वाली, कुमायूंनी, मारवाड़ी, मालवी, निवाड़ी, राजस्थानी, बांगडू, हरियाणी आदि अनेक लोक भाशाओं का विस्तार है परन्तु उत्तर प्रदे ा में बोली जाने वाली लोक–भाशाऐं तथा उनका क्षेत्र विस्तार इस प्रकार है–

भोजपुरी–गोरखपुर, देवरिया, आजमगढ़, गाजीपुर, बलिया, वाराणसी, बस्ती (हरैया तहसील को छोड़कर) जौनपुर, मिर्जापुर (दुदधी और चुनार)।

अवधी–हरैया तहसील (जिला बस्ती), फैजाबाद, गोंडा, बहराइच, सीतापुर, लखीमपुर खीरी, बाराबंकी, लखनऊ, रायबरेली, सुल्तानपुर, प्रतापगढ़, मिर्जापुर (ोश भाग), इलाहाबाद, फतेहपुर, बांदा (पूर्वी), कानपुर, उन्नाव।

कनउजी–फर्रूखाबाद, हरदोई, इटावा (उत्तरी अं ा), मैनपुरी (पूर्वी)।

ब्रज–आगरा, मथुरा, अलीगढ़, एटा, इटावा (ोश), बुलन्द ाहर, मैनपुरी (प िचमी)।

बुन्देली–जालौन, झांसी, हमीरपुर, बांदा (अधिकां ा)।

कौरवी–मेरठ, मुजफ्फरनगर, बदायूँ, सहारनपुर, बिजनौर।

रूहेली–बरेली, मुरादाबाद, भााहजहाँपुर, रामपुर, पीलीभीत।

इन लोक भाशाओं में सबसे अधिक कार्य भोजपुरी, बुन्देली, अवधी और ब्रज में हुआ है। अभी तक जो भी प्रयत्न हुए हैं, उनका उद्दे य आंचलिक संस्कृति पर बल देना रहा है। प्रत्येक अंचल मं एक–सा उल्लास है, एक–सी मंगलाकांक्षा है, एक–सा अजर अमर वि वास है। यही नहीं अर्थ की अनुहारता के साथ ही साथ लय की अनुहारता स्पश्ट रूप से लक्षित होती है। आज आव यकता इसी दृश्टि से अध्ययन करने की है।

अन्ततः लोकगीत समाज का वह दर्पण होता है, जिसके द्वारा समाज में घटित कृत्यों को गीतों के माध्यम से जनता के समक्ष रखते हैं। हमारे दे ा में प्रत्येक संस्कार, प्रत्येक पर्व तथा ऋतुओं पर आनन्द मग्न हो सामान्य जन लोकगीतों को गाकर अपने भावों को व्यक्त करते हें। उत्तर प्रदे ा के लोकगीतों में भारतीय परम्परा पूर्णरूपेण परिलक्षित होती है। स्वछन्द भावना तथा अभिव्यक्ति ही इन लोकगीतों का सार है। एक बड़ा प्रदे ा होने के नाते उत्तर प्रदे ा में विभिन्न धर्मों के लोग व्रत, उत्सव एवं त्यौहारों आदि पर लोकगीतों को गाकर अपनी मनोकामनाओं एवं सुख समृद्धि की कल्पना करते हैं। अतः यहाँ के लोकगीतों में भारत कें सामाजिक, पारिवारिक, धार्मिक विकास प्रकट होता है। इन गीतों मं सरसता, सरलता, मधुरता तथा लय का स्वाभाविक गुण है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. लोकगीतों का विकासात्मक अध्ययन (डॉ0 कुलदीप) प्रगति प्रका ान आगरा–3, पृश्ठ संख्या 1, 2, 3, 48, 49

2. मिथिला सांस्कृतिक परम्परा में लोकगीत (डॉ0 मोहनानन्द झा) जानकी प्रका ान पटना, दिल्ली, पृश्ठ संख्या 1, 3, 4

3. लोकगीतों की सांस्कृतिक पृश्ठभूमि (भोजपुरी और अवधी के सन्दर्भ में) (डॉ0 विद्या चौहान) प्रगति प्रका ान आगरा–3, पृश्ठ संख्या 77, 104, 105

4. उत्तर प्रदे ा के लोकगीत (सूचना विभाग, उत्तर प्रदे ा) सूचना विभाग, उत्तर प्रदे ा, लखनऊ।